तृतीय अध्याय

प्रभाकर श्रोत्रिय के नाटकों में मंचीयता

3.1 प्रस्तावना :

साहित्यिक दृष्टि से कितना भी सफल नाटक क्यों न हो जब तक उसका मंचन सफलता से नहीं होता तब तक वह चर्चित नाटक नहीं बन पाता। एक सफल नाटककार को मंच का ध्यान रखते हुए उसका लेखन करना पड़ता है। मंच-सज्जा, दृश्य-सज्जा, रूप-सज्जा, अभिनेयता, प्रकाश-योजना, संगीत एवं ध्वनि तथा पाठकीय संवेदना का ध्यान नाटककार अगर ठीक से रखता हो तो नाटक का मंचन सफल बन पाता है। नाटक के सफल मंचन के लिए नाटककार को मंचीयता की जानकारी होनी आवश्यक है। प्रभाकर श्रोत्रिय के नाटकों की मंचीयता को उपर्युक्त मुद्दों के आधार पर परखना उचित होगा।

3.1.1 प्रभाकर श्रोत्रिय जी के नाटकों में मंच-सज्जा :-

मंच-सज्जा मंचीयता का एक प्रमुख अंग है। नाटक की शुरूआत में मंच पर विभिन्न वस्तुओं को रखा जाता है जैसे नाटक में मध्ययुगीन राजकारोबार का चित्रण हो तो राजा का सिंहासन मंच पर होता है, बाकी मंत्रियों के लिए अन्य कुर्सियाँ रखी जाती है। द्वारपाल द्वारा पर खड़े होते हैं। दीवार पर तलवारें रखी जाती है। शेर का चित्र लगाया जाता है आदि। नाटक में यदि आधुनिक काल का वर्णन हो तो मेज, कुर्सियाँ, किताबें, टेबल लेंप, परदा आदि चीजें मंच पर दिखाई देती हैं। नाटक में अगर वन का चित्रण किया गया हो तो पेड़ों और वन के चित्र वाला परदा दीवार पर लटकाया जाता है। इस प्रकार मंच-सज्जा से कथावस्तु में चित्रित परिवेश के निर्माण में सहायता होती है।

'इला' की कथावस्तु 'श्रीमद् भागवत' पर आधारित है। इसमें राजदरबार का चित्रण किया गया है।

आद्यपुरुष मनु और श्रद्धा की पुत्री इला की कथा इसमें है। पूरे नाटक में राजकारोबार एवं वनों का चित्रण दिखाई देता है। इसी कारण मंच पर तत्कालीन परिवेश को चित्रित करने के लिए नाटककार ने मंच की रचना तद्नुरूप की है। एक ही मंच की योजना प्रस्तुत नाटक में की गई है। मंच-सज्जा को लेकर श्रोत्रिय जी ने स्थान-स्थान पर संकेत दिए हैं। पहले अंक के तीसरे दृश्य की शुरूआत में मंच-सज्जा को लेकर संकेत मिलते हैं -

"राजभवन का भीतरी कक्ष। श्रद्धा पलंग पर अधलेटी
विचारमग्न। पास पलने में 'इला' सोई है।
चंद्रिका कक्ष को सँवार रही है।"[1]

दूसरे अंक के अंतिम दृश्य में भी इस प्रकार के संकेत हैं -

"मंच पर यात्रा की तैयारी की हड़बड़ियाँ"[2]

तीसरे अंक के प्रारंभ में शरवण का वर्णन है -

"शरवण वन में अकेला सुद्युम्न। मंच के एक सिरे से दूसरे सिरे तक। पर्वतमाला। प्रकृति परिवेश अत्यंत मनोरम।"[3]

चौथे अंक के चौथे दृश्य में राजसभा का चित्रण किया गया है। इसका वर्णन दर्शनीय है -

"राजसभा चामरधारिणी पीछे खड़ी है। महामंत्री,
प्रधान - न्यायाधीश, न्याय-पंडित, बलाध्यक्ष और
दंडनायक मर्यादानुसार बैठे हैं। प्रतिहारी का प्रवेश।"[4]

इस प्रकार 'इला' इस नाटक में नाटककार श्रोत्रिय जी ने पर्याप्त संकेत दिए हैं। जिसका निर्देशक को निश्चित रूप से लाभ हुआ है।

'साँच कहूँ तो' का प्रथम मंचन कला मंदिर ग्वालियर द्वारा कला वीथिका, ग्वालियर के खुले मंच पर 3 अक्तूबर 1993 को डॉ. कमल वशिष्ठ के निर्देशन में हुआ है। इसका संगीत निर्देशन श्री श्याम अग्रवाल ने किया। प्रस्तुत नाटक का रंगमंच दो स्तरीय है। ऊपरी भाग को नीचे से जोड़ता एक रपटा (ढाल) है। इसका उपयोग भिन्न-भिन्न दृश्यों के लिए किया गया है। मंच की दृष्टि से यह प्रयोगशील नाटक है।

प्रस्तुत नाटक में रंगमंच दो स्तरीय है ऊपरी और निचले मंच के बारे में नाटककार ने पर्याप्त निर्देश दिए हैं। प्रथम अंक के प्रथम दृश्य की शुरूआत में मंच-सज्जा का वर्णन देखिए -

"ऊपरी मंच पर महाराज भोज आते हैं। पीछे-पीछे छत्रधारी। चौकी पर बैठते हैं। 'राजराजेश्वर भोज देख की जय' का घोष करते हुए दो-चार राव-उमराओं का प्रवेश। प्रणाम करते हैं। संकेत पर बैठते हैं।"[5]

तीसरे अंक के दूसरे दृश्य में भी मंच-सज्जा का वर्णन किया है -

"ऊपरी मंच पर उदास बैठी राजमती। निचले मंच पर स्त्रियाँ दीपावली के दीये लेकर नृत्य करती हैं।"[6] तीसरे अंक के सातवे दृश्य के प्रारंभ में अजमेर का चित्रण किया है। राजा बीसल के आगमन की खुशी में राजमती की सखियाँ गीत गा रही हैं। मंच-सज्जा का वर्णन दृष्टव्य है -

"अजमेर का महल सजाया जा रहा है। रंगीन प्रकाश। नेपथ्य से नगाड़े आदि की ध्वनियाँ। राजमती का सखियों सहित सोल्लास प्रवेश। सखियाँ नृत्य करते हुए गाती हैं। राजमती दूर खड़ी है।"[7]

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में नाटककार श्रोत्रिय जी ने मंच-सज्जा को लेकर निर्देश दिए हैं। फलतः निर्देशक कमल वशिष्ठ जी को मंच सजाने में सहायता हुई है। प्रस्तुत नाटक में मंच-सज्जा संभालने का काम सुनील उप्पल, नब कुमार मूलचंद्र और राकेश जी ने किया है।

'फिर से जहाँपनाह' प्रकाशन काल की दृष्टि से श्रोत्रिय जी का तीसरा नाटक है। प्रस्तुत नाटक में एक ही रंगमंच की योजना है। नाटक की शुरूआत में ही नाटककार ने मंच-सज्जा को लेकर निर्देश दिए हैं। प्रथम अंक में 21 वीं सदी का चित्रण होने के कारण मंच आधुनिक उपकरणों से सजाया गया है। एक जगह पर नाटककार संकेत देते हैं -

"मंच के भीतरी भाग में चक्रवर्ती सोफे पर,
कुर्सी पर स्टेनो जुही।"[8]

प्रथम अंक के सातवें दृश्य की शुरूआत में भी नाटककार ने मंच-सज्जा को लेकर निर्देश दिए हैं। मुखिया चक्रवर्ती ने अपने पर लगे आरोपों को मिटाने हेतु जाँच आयोग का गठन करवाया है। इसकी मंच-सज्जा का चित्रण देखिए -

"जाँच आयोग बैठा है। बीच में चक्रवर्ती, एक ओर त्यामूर्ति और दूसरी ओर अब्दुल्ला। एक ओर मुस्तैद सचिव गुणगान। सामने बेंच पर दो वकील। आसपास कटघरे। दर्शकदीर्घा में कुछ लोग। खुसर-फुसर।"[9]

इस प्रकार 'फिर से जहाँपनाह' इस नाटक में नाटककार श्रोत्रिय जी ने मंच-सज्जा के निर्देश दिए हैं। मंच-सज्जा की दृष्टि से श्रोत्रिय जी के तीनों नाटकों में पर्याप्त संकेत मिलते हैं। 'साँच कहूँ तो' इस नाटक में दो मंचों की योजना का सफल प्रयोग है। 'इला' में पौराणिक परिवेश का चित्रण है तथा 'फिर से जहाँपनाह' में आधुनिक तथा मध्ययुगीन परिवेश के अनुरूप उन्होंने मंच-सज्जा का वर्णन किया है।

3.1.2 प्रभाकर श्रोत्रिय के नाटकों में दृश्य-सज्जा :-

दृश्य-सज्जा मंचीयता का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। नाटक में कम-से-कम तीन अंक होते हैं। इनमें अनेक दृश्यों की योजना नाटककार करता है। मंच पर दिखाई देनेवाले दृश्य से दर्शकों को कथावस्तु समझने में सुलभता

होती है। मंच पर दृश्यों की जादती भी दर्शकों की एकाग्रता को विचलीत करती है। श्रोत्रिय जी ने अपने तीनों नाटकों में अनेक दृश्यों की योजना की है। हर दृश्य की सजावट अलग प्रकार की होती है इसी कारण इसमें समय भी लगता है।

'इला' इस नाटक में श्रोत्रिय जी ने दृश्य-सज्जा को लेकर पर्याप्त निर्देश दिए हैं। पहले अंक के चौथे दृश्य में नाटककार ने लिखा है -

''राजभवन का कक्ष। मनु और वशिष्ठ बातचीत की मुद्रा में चित्रवत।''[10]

दूसरे अंक के पहले दृश्य की शुरूआत में श्रोत्रिय जी ने दृश्य-सज्जा के बारे में निर्देश दिए हैं। यहाँ पर वाचक और प्रतिवाचक का वर्णन है -

''पर्दे के बाहर (पुरुष) और प्रतिवाचक (स्त्री)। स्थानीयता के अनुरूप लोकगायक का वेश, यथास्थान भाव के अनुरूप आक्रोश, व्यंग्य, उपहास, वेदना आदि की अभिव्यक्ति। प्रसंगानुकूल वाद्य-संगीत का प्रयोग।''[11]

तृतीय अंक के द्वितीय दृश्य में वन-प्रदेश का वर्णन मिलता है। इसके लिए नाटककार ने दृश्य की शुरूआत में ही निर्देश दिए हैं -

''वन-प्रदेश। एक आकर्षक ऋषि-कुमार पुष्प चुन रहा है। हाथ में पुष्प-मंजूषा। इला का घूमते हुए प्रवेश। ऋषि कुमार को देखकर विस्मित, प्रसन्न होती है। लता की आड़ से उसकी गतिविधियाँ देखती है। ऋषि कुमार पुष्प-चयन में व्यस्त।''[12]

चतुर्थ अंक की शुरूआत में श्रोत्रिय जी ने राज-सभा का वर्णन किया है। इस दृश्य के बारे में उन्होंने दृश्य के पहले ही संकेत दिए हैं -

''राज-सभा। सुद्युम्न राजसिंहासन पर उदास। हाथ पर सिर टिकाए। प्रतिहारी का प्रवेश। अभिवादन। उसकी ओर देखते हैं।''[13]

इस प्रकार श्रोत्रिय जी ने 'इला' इस नाटक में दृश्य-सज्जा को लेकर निर्देश दिए हैं।

'साँच कहूँ तो' तीन अंकों का नाटक है। इसमें कई दृश्यों की योजना नाटककार ने की है। दृश्य की शुरूआत में मंच पर जिस प्रकार की रचना होती है उससे दृश्य की पहचान दर्शकों को होती है। प्रस्तुत नाटक में भी नाटककार ने दृश्य-सज्जा का वर्णन कई जगहों पर दिया है। पहले अंक के द्वितीय दृश्य का वर्णन इस प्रकार है -

''ऊपरी मंच पर महाराजा भोज और महारानी भानुमती विचारमग्न बैठे हैं। द्वारपाल का प्रवेश।''[14]

पहले अंक के चतुर्थ दृश्य की शुरूआत में भी नाटककार ने दृश्य-सज्जा का वर्णन किया है -

''पार्श्व से छत्रछाया में बीसलदेव का प्रवेश। ऊपरी मंच से राजमती वधू देश में झाँक रही है। बीसलदेव से आँख मिलते ही खिलखिलाकर भाग जाती है। बीसल मुस्कराते हुए बढ़ जाता है। सामने से भानुमती के पीछे-पीछे सुहागिनें कलश, थाल में आदि लिए आती हैं।''[15]

द्वितीय अंक की शुरूआत में भी दृश्य-सज्जा का वर्णन हुआ है। इसमें अजमेर के राजमहल का चित्रण दिखाई देता है -

''अजमेर का राजमहल। बीसलदेव, राजमती की उत्सुक प्रतीक्षा में। राजमती दौड़ती हुई आती है। बीसलदेव चकित।''[16]

इस प्रकार 'साँच कहूँ तो' इस नाटक में नाटककार ने दृश्य-सज्जा का वर्णन किया है।

'फिर से जहाँपनाह' इस नाटक में दो अंक है। इन दो अंको में 18 दृश्यों की योजना नाटककार ने की है। हर दृश्य का परिवेश अलग प्रकार का है। पहले अंक के दूसरे दृश्य की प्रारंभ का वर्णन इस प्रकार है -

''मंच के अगले भाग में आमने-सामने से त्यागमूर्ति और मंगलम अपनी धुन में आते और बीचों बीच टकरा जाते हैं। एक दूसरे को घूरते और पहचानते हुए हाथ मिलाते है।''[17]

चतुर्थ दृश्य की शुरूआत में चक्रवर्ती और स्टेनो जुही का वर्णन है -

''चक्रवर्ती सोफे पर। जुही सटी बैठी है। विलासी चेष्टाएँ। सहसा निजी सचिव अकरम आ जाता है। मुखिया हड़बड़ा जाता है। जुही चुपके से खिसक जाती है।''[18]

नाटक में दूसरे अंक में आदमशाह के राजकारोबार एवं राजमहल का चित्रण है। दूसरे दृश्य का चित्रण निम्नानुसार है -

''मंगसलिंह के आवास का बाहरी कक्ष। असदुल्ला बेचैनी से टहल रहा है। भीतर से आते मंगलसिंह का पता नहीं चलता। मंगलसिंह कुछ देर तक अपने में खोए असदुल्ला को देखता रहता है, जो सहसा सामने पड़ने पर मंगलसिंह से टकरा जाता है।''[19]

इस प्रकार नाटककार श्रोत्रिय जी ने 'इला', 'साँच कहूँ तो' और 'फिर से जहाँपनाह' इन नाटकों में दृश्य-सज्जा का वर्णन किया है। 'इला' इस नाटक में दृश्य, 'साँच कहूँ तो' में तथा 'फिर से जहाँपनाह' में दृश्यों की योजना नाटककार ने की है। हर दृश्य के प्रारंभ में नाटककार ने संकेत दिए हैं इसके कारण निर्देशकों को सहायता हुई है। नाटककार के इन्हीं संकेतों के कारण दर्शक नाटक की कथावस्तु से तादात्म्य स्थापित करते हैं। श्रोत्रिय जी के तीनों नाटक दृश्य-सज्जा की दृष्टि से संपृक्त नाटक है। हर दृश्य में परिवेश निर्मिती हेतु मंच पर जिन उपकरणों की योजना की गई है उनके कारण दर्शक उस परिवेश का अनुभव करते हैं। अतः यह कहना सही होगा कि श्रोत्रिय जी के तीनों नाटक दृश्य-सज्जा की दृष्टि से सफल सिद्ध हुए हैं।

3.1.3 प्रभाकर श्रोत्रिय के नाटकों में वेषभूषा एवं रूप-सज्जा :-

रूप-सज्जा तत्व के अंतर्गत मुख्यतः रंगसज्जा (Make-up), केशभूषा (Hair Style) तथा वेषभूषा (Costume) का विचार होता है। अलंकार कला को वेषभूषा के अंतर्गत ही विश्लेषित किया जाता है। रूपसज्जा के कारण ही नाटक के रूपकत्व को अर्थ प्राप्त होता है तथा नाटकीय प्रभाव भ्रांतिपूर्ण मंचीय परिवेश निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती है। नुक्कड़ नाटक में रूपसज्जा विषयक तत्व का कोई महत्व नहीं होता किंतु प्रस्तुत कार्य अन्य तत्वों पर अधिक निर्भर रहकर पूरा करना पड़ता है।

गोविंद त्रिगुनायत जी का कथन है, "मंचीय परिवेश में वेषभूषा द्वारा विभिन्न परिणामों के साथ, उनमें विविध रंगों के प्रयोग के कारण शुभ-अशुभ, सुख-दुःख, जय-पराजय, विभिन्न विचार, मत-मतांतर बोध के साथ चरित्रों की सुरूचि, मनोदशाओं को मंचित करना सहायक सिद्ध हुआ है।"[20]

नाटककार को पात्रों के अनुसार वेषभूषा का नियोजन करना पड़ता है। 'इला' इस नाटक में पुराणकालीन राज-व्यवस्था का चित्रण होने के कारण तत्कालीन परिवेश के अनुकूल वेषभूषा एवं रूपसज्जा का नियोजन नाटककार ने किया है।

'इला' इस नाटक में नाटककार ने वेषभूषा को लेकर अनेक स्थानों पर निर्देश दिए हैं। नाटक की शुरूआत में ही पूर्व-रंग में कथा वाचक की वेषभूषा के बारे में नाटककार ने लिखा है -

"स्थानीयता के अनुरूप कथा-वाचक का वेष। साथ में ढोलक, मृदंग या स्थानीय वाद्य लिए, पारंपारिक लोक-वेश में एक व्यक्ति जो बीच-बीच में यथा अवसर थाप देता है।"[21]

तीसरे अंक के प्रथम दृश्य में भी दो स्थानों पर सुद्युम्न की वेशभूषा के बारे में निर्देश मिलते हैं -

"राजसी वस्त्र, तरकस आदि देखता है, असुविधा का भाव।"[22]

"शरीर पर मात्र उत्तरीय और अधोवस्त्र। केयूर कलाई में।"[23]

पूरे नाटक में रूपसज्जा को लेकर एक-दो जगह पर ही वर्णन मिलता है। दूसरे अंक के पहले दृश्य में एक जगह पर वर्णन दिखाई देता है -

"राजभवन का भीतरी कक्ष। श्रद्धा कोई करूण रागिनी गुनगुना रही है। नेपथ्य से धीमा संगीत। मुख पर प्रौढता के लक्षण। सुद्युम्न का प्रवेश। बाल-बिखरे, वस्त्र अस्त-व्यस्त, थकान के चिन्ह कंधे पर तूणीर, हाथ में धनुष।"[24]

इसी अंक के दूसरे दृश्य में भी एक जगह पर रूपसज्जा को लेकर वर्णन हुआ है -

"दंडधारी एक व्यक्ति को धकियाते हुए लाता है, उसके कपड़े फटे हैं, शरीर क्षत-विक्षत है।"[25]

इस प्रकार 'इला' इस नाटक में श्रोत्रिय जी ने वेशभूषा एवं रूपसज्जा को लेकर वर्णन किया है।

साँच कहूँ तो' नाटक वेषभूषा एवं रूपसज्जा की दृष्टि से एक सफल नाटक कहा जा सकता है। इसमें मध्ययुगीन राज-व्यवस्था का चित्रण हुआ है। नाटककार ने परिवेश के अनुकूल वेशभूषा का नियोजन किया है। नाटक की शुरूआत में ही वेशभूषा एवं रूपसज्जा को लेकर नाटककार ने संकेत दिए हैं -

''निचले मंच पर एक ओर से पारंपारिक वेश में लोकगायक और दूसरी ओर से विदूषक आता है।''[26]

यहीं पर रूपसज्जा को लेकर निर्देश हुए हैं -

''ऊपरी मंच पर आवरण के पीछे मुखौटाधारी गणेश और सरस्वती का क्रमशः आगमन।''[27]

तीसरे अंक के प्रथम दृश्य में जहाँ राजमती अपने पति बीसलदेव का वर्णन पंडित को बता रही है वहाँ पर रूपसज्जा का वर्णन हुआ है -

''माथे पर तिलक बाल-सूरज सा दमकता है
केश में केवड़े की भीनी गंध आती है।
उर चौड़ा, कटि पतली, कृपाण मचलती जहाँ,
यम की दाढ़-सी शत्रु को कँपाती है।
ठुड्डी पर केश मँडराते हैं भ्रमर जैसे
तिल दाई आँख के कोए में सुहाता है
नवलखे उँचे घोड़े पर सवार वीर,
लाखों के बीच अलग पहचाना जाता है।''[28]

इस प्रकार 'साँच कहूँ तो' इस नाटक में वेशभूषा एवं रूपसज्जा का चित्रण हुआ है। प्रस्तुत नाटक के मंचन के समय की वेशभूषा का नियोजन ए. के. सिंह, प्रदीप कुमार, मतता जी और बृजेशजाटव ने किया है।

'फिर से जहाँपनाह' में श्रोत्रिय जी ने आधुनिक और मध्ययुगीन कालखंड का चित्रण किया है। पहले अंक में परिवेश के अनुसार नेतागण एवं अन्य लोग आधुनिक पोशाख पहनते हैं तथा दूसरे अंक में मध्ययुगीन राजा-महाराजाओं की भाँति परिधानों की योजना की गई है। प्रथम अंक में चक्रवर्ती अपने पर लगे आरोप मिटाने हेतु समिति का गठन करते हैं। वकील मंच पर कोट, टाई वगैरा पहनकर आते हैं। वेशभूषा को लेकर नाटक में एक-दो जगह पर ही निर्देश हुए हैं। वादी वकील अपनी दलील कोर्ट में पेश कर रहा है -

''उत्तेजना से हाँफता हुआ, टोप पहन कर आसंदी पर बैठता है।''[29]

इसी दृश्य में अनंत चक्रवर्ती कटघरे में आते हैं उनकी वेशभूषा का वर्णन नाटककार ने किया है -

''टोप टाँग कर, टोपी पहन कर, कटघरे में आता है।''[30]

पूरे नाटक में रूपसज्जा को लेकर एक-दो जगह पर ही निर्देश हुए है। प्रथम अंक के अंतिम दृश्य में कबीर को लोग माला, टोपी, वगैरा पहनकर चले जाते हैं उसका चित्रण इस प्रकार है -

''कबीर को पाट पर बिठाते हैं। विभिन्न दलों, जातियों, वर्गों के लोक क्रमशः आते हैं। कोई तिलक लगाकर माला पहनता है, कोई आरती उतारता है। कोई दाढ़ी लगाता है, कोई टोपी पहनता है, कोई पगड़ी रख जाता है, कोई क्रास पहना जाता है, कोई कृपाण दे जाता है, कोई शराब की बोतल थमा देता है इन सबसे कबीर लगभग लद जाता है।''[31]

इस प्रकार प्रभाकर श्रोत्रिय जी ने अपने तीनों नाटकों में वेशभूषा एवं रूपसज्जा के निर्देश हुए हैं। नाटककार ने परिवेश के अनुकूल ही वेशभूषा एवं रूपसज्जा की योजना की है। प्रथम नाटक 'इला' पौराणिक परिवेश पर आधारित होने के कारण नाटककार ने पात्रों की वेशभूषा तत्कालीन परिवेश के अनुकूल ही है। लोक गायकों को स्थानीय वेश प्रदान किया है। 'साँच कहूँ तो' इस नाटक में मध्ययुगीन काल का चित्रण किया है इसी कारण नाटककार ने तत्कालीन राज-व्यवस्था के अनुकूल पात्रों को वेशभूषा की योजना की है। पात्रों की रूपसज्जा का भी विवरण किया है। तृतीय नाटक 'फिर से जहाँपनाह' में मध्यकालीन एवं आधुनिक परिवेश का चित्रण किया है। इस नाटक में भी नाटककार ने पात्रानुकूल वेशभूषा के संकेत दिए हैं। कबीर इस पात्र की रूपसज्जा का विवरण हुआ है। इस प्रकार श्रोत्रिय जी के तीनों नाटक वेशभूषा एवं रूपसज्जा की दृष्टि से परिपूर्ण हैं।

3.1.4 प्रभाकर श्रोत्रिय के नाटकों में अभिनेयता :-

अभिनेताओं द्वारा जो क्रिया-व्यापार मंच पर किया जाता है उसे अभिनेयता कहते हैं। नाट्यशास्त्र में अभिनेताओं के कर्म को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। भरतमुनि ने नटों की सामाजिक प्रतिष्ठा को स्थापित करने का पूरा प्रयत्न किया है। नाट्यशास्त्र में अभिनय के आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक आदि चार भेदों का उल्लेख है।

अभिनेता मंचीयता का सबसे अहम अंग माना जाता है। सफल अभिनय के बल पर ही नाटक के मंचन की सफलता-असफलता निर्भर होती है। प्रस्तुत नाटक का मंचन कई बार हुआ है। 'इला' में अभिनय को लेकर श्रोत्रिय जी ने पूरे नाटक में निर्देश दिए हैं। हर पात्र का अभिनय सशक्त होने हेतु उन्होने संकेत दिए हैं। श्रोत्रिय जी ने नाटक में जिन पात्रों की रचना की उनके अभिनय के बारे में निर्देश हैं। नाटक में प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में मनु के अभिनय का वर्णन इस प्रकार है -

''मनु बेचैनी से टहलते हैं। प्रकाश उनके साथ-साथ चलता है। तनाव ग्रस्त मुद्रा। हाथ मलते हैं। कभी

15203

अंगवस्त्र मुठ्ठी में कसते, कभी हाथ में लपेटते खोलते हैं।''[32]

इसी दृश्य में और एक जगह पर वर्णन है -

''मनु व्यग्र से घूमते हैं। वशिष्ठ अवाक, किसी अप्रत्याशित की आशंका में; आँखों से मनु का अनुसरण करते हैं! घूमते हुए सहसा वशिष्ठ के ठीक सामने रूककर उन्हें तीखी आँखों से देखते हैं। वशिष्ठ आशंकित प्रश्न मुद्रा में।''

प्रस्तुत नाटक में इला के अभिनय का चित्रण है। तीसरे अंक के दूसरे दृश्य में इला के अभिनय का चित्रण इस प्रकार हैं -

''इला मुस्कराती है, फिर खिलखिला पड़ती है, लगातार बुध हक्का-बक्का, मानो कुछ अनुचित, कह गया हो ताकता रहा जाता है।''[33]

नाटक में अन्य पात्रों में राजगुरू वशिष्ठ, रानी श्रद्धा, राजा सुद्युम्न आदि प्रमुख पात्र है। श्रद्धा पहले पत्नी फिर माँ की भूमिका निभाती है उसने भी सशक्त अभिनय किया है। राजा सुद्युम्न की भूमिका नाटक में अहम है। इला का परिवर्तन सुद्युम्न में किया जाता है। फिर भी उसके शरीर में स्त्रीयोचित गुण विद्यमान हैं। सुद्युम्न के अभिनय को लेकर भी निर्देश हैं।

गौण पात्रों में विद्याधर, चंद्रिका, लोक गायक द्वारपाल, महामंत्री आदि है। इनके अभिनय के बारे में नाटककार ने निर्देश दिए हैं। इस प्रकार 'इला' यह नाटक अभिनय की दृष्टि से सफल नाटक सिद्ध होता है।

'साँच कहूँ तो' यह श्रोत्रिय जी का दूसरा नाटक अभिनेयता की दृष्टि से सफल सिद्ध हुआ है।इसमें प्रमुख पात्रों के लिए पर्याप्त निर्देश दिए हैं। नाटक में राजा भोज, भानुमती, राजा बीसल, रानी राजमती, इंद्रावती पंडित आदि पात्रों की भूमिकाएँ प्रमुख हैं। नाटक की शुरूआत में लोकगायक और विदुषक अभिनय के द्वारा लोगों को हँसाने का प्रयास करते हैं। इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है।

रानी राजमती नायिका है। अपने अभिनय द्वारा वह दर्शकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। वह तीखे बोल बोलती है। बीसलदेव के वियोग में उद्वीग्न दिखाई देती है। सखियों के बीच हमेशा खेलती रहती है। एक उदाहरण दृष्टव्य है -

''सखी : निरी बच्ची है री तू!

राजमती : और तू तो बड़ी-बूढी है न जैसे! लाठी टेककर चलने का अभिनय करती है। सखियाँ हँसती हैं।''[34]

राजा बीसलदेव नायक है। उसके अभिनय को लेकर भी निर्देश हैं। रानी राजमती की फटकार के कारण वह उड़ीसा राज्य की ओर धन की अपेक्षा से जा रहा है। इसका वर्णन दृष्टव्य है -

बीसल : (कड़ककर) लडकपन छोड़ राणी, जीवन खेल नहीं है मैं उड़ीसा जा रहा हूँ।

राजमती : अरे उड़ीसा क्या थारे अँगरखे की जेब में है राजाजी कि निकाला और देख लिया !

बीसल : (कुढ़ता है। स्वगत) दुष्टा....."[35]

राणी इंद्रावती बीसलदेव की प्रथम पत्नी है। उसके अभिनय को लेकर भी निर्देश हैं। राजमती के राजमहल में आने से वह उससे ईर्ष्या करने लगती है। कई स्थानों पर उसने नाटकीय अभिनय किया है। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है -

इंद्रावती : "(पैतरा बदलकर) हे स्वामी ! मुझे तो आपकी चिंता सताती है..... घर में सुख-शांति न हो तो राज-काज में विघ्न पड़ता है। मेरे स्वामी के प्रताप पर आँच आए (रोने का नाटक करते हुए) इसके पहले हे प्रभु, मुझे उठा ले (रोना तेज हो जाता है।)"[36]

अन्य पात्रों में राजा भोज और रानी भानुमती के अभिनय को लेकर भी संकेत हैं। राणी राजमती का विवाह करके दोनों कर्तव्य से मुक्त हो जाते हैं। पंडित जी के अभिनय के लिए भी निर्देश हैं। उड़ीसा नरेश और महाराणी ने भी अपनी भूमिकाएँ निभाई हैं। गौण पात्रों में राजमती की सखियाँ, दासियाँ राजमती की मामीसा कुटनी, दरबारी, योगी, सैनिक आदि हैं। इनके लिए भी नाटककार ने अभिनय के संकेत दिए हैं।

इस प्रकार 'साँच कहूँ तो' यह नाटक अभिनेयता की दृष्टि से सफल नाटक है।

श्रोत्रिय जी का तीसरा नाटक 'फिर से जहाँपनाह' अभिनेयता की दृष्टि से सफल नाटक सिद्ध हुआ है। नाटककार ने प्रस्तुत नाटक में दो अंकों में दो कालखंडों का चित्रण किया है। पहले अंक में जो पात्र है वहीं दूसरे अंक में नाम बदलकर भूमिकाएँ करते हैं। अनंत चक्रवर्ती एक भ्रष्ट एवं स्वार्थी राजनेता की भूमिका बखूबी निभाते हैं। दूसरी तरफ वर्मा एक ईमानदार एवं सच्चे राजनेता के रूप में सामने आते हैं। आदमशाह ने भी सशक्त अभिनय किया है। एक तानाशाह को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए इसका अच्छा उदाहरण आदमशाह है। नाटक में लोकगायक और विदूषक ने भी सशक्त भूमिका अदा की है।

अनंत चक्रवर्ती पार्टी के मुखिया है। वह सभी मंत्रियों पर रोब जमाते हैं। निजी स्टेनो जुही पर किसने अत्याचार किया होगा ? इस बात को लेकर मंगलम्, त्यागमूर्ति और चक्रवर्ती विचार कर रहे हैं। बात-बात में त्यागमूर्ति चक्रवर्ती की ओर इशारा करते हैं। यहाँ पर चक्रवर्ती का अभिनय देखने लायक है। चक्रवर्ती एकदम उत्तेजित होकर कहता है - "नीच नाली के कीड़े तेरे ये तेवर ! दो कौड़ी का आदमी था, मैंने शिखर पर बिठा दिया तो तू सचमूच बैठ ही गया ! तेरी ये हिम्मत !"[37]

आलमशाह ने भी सशक्त अभिनय किया है। अपनी पत्नी के रिश्तेदार इम्तियाज का कत्ल करवाने के बाद आलमशाह इस घटना पर नाटकीय ढंग से सहानुभूति व्यक्त करते हैं -

शाह : (नाटकीय शोक का प्रतिशत बढ़ाकर) कासिमखान !!

कासिम : जी हुजूर !!

शाह : मेरे बच्चे का मकबरा ऐसा बनवाना, ऐसा यादगार मकबरा, ऐसा बेजोड़ कि आज तक किसी बादशाह का किसी पीर का, किसी पैगंबर का न बना हो।''[38]

इस प्रकार श्रोत्रिय जी ने तीनों नाटकों के पात्रों के लिए अभिनय के निर्देश दिए हैं। लेखक ने हर पात्र को अच्छी तरह से पेश किया है। 'इला' में आदिपुरुष मनु और श्रद्धा इन दो पात्रों की प्रमुख भूमिकाएँ हैं। नाटककार ने इनके अभिनय के लिए स्थान-स्थान पर संकेत दिए हैं। राजगुरू वशिष्ठ, विद्याधर चंद्रिका आदि पात्रों के अभिनय के संकेत भी दिए हैं। इससे निश्चित रूप से पात्रों को अभिनय में सहायता हुई है। 'साँच कहूँ तो' में राजा बीसलदेव और राणी राजमती की प्रमुख भूमिका है। नाटककार ने प्रस्तुत पात्रों के लिए अभिनय के पर्याप्त निर्देश दिए हैं। 'फिर से जहाँपनाह' श्रोत्रिय जी का प्रयोगशील नाटक है। इसमें दो युगों का चित्रण है। इसमें प्रथम अंक में जो पात्र अभिनय करते हैं वही नाम बदलकर दूसरे अंक में भी करते हैं। प्रस्तुत नाटक भी अभिनेयता की दृष्टि से परिपूर्ण है। इसी प्रकार श्रोत्रिय जी तीनों नाटक अभिनेयता की दृष्टि से परिपूर्ण हैं।

3.1.5 प्रभाकर श्रोत्रिय के नाटकों में प्रकाश-योजना :-

नाटक दर्शकों के सामने प्रत्यक्ष खेला जाता है। उसका मंचन दिन में हो या रात में उसके लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है। अधिकतर नाटक रात में खेले जाते हैं। इसी कारण प्रकाश-योजना मंचीयता का एक अहम हिस्सा बन गया है। इसके बारे में गोविंद त्रिगुणायत जी लिखते हैं ''प्रकाश योजना के लिए आज कई प्रकार के यांत्रिक विद्युत उपकरणों से सहायता ली जाती हैं। रिफ्लेक्टर संघात उपकरण (मैगजीन उपकरण) आदि वैज्ञानिक दीप्ति उपकरणों से मंच पर प्रकाश-प्रक्षेपण या आलोक-वितरण के कई रूप सुलभ हैं। यथा तल-प्रकाश (फुट लाइट), भास्वर प्रकाश (फ्लड लाइट), कोमल आलोक प्रधान बिंदु प्रकाश आदि। अनेक कोणों से विकीर्ण किये जाने वाले इन विभिन्न रंगदीपणों से आज रंगमंच पर दृश्यमूलक कई नये प्रभावों की सृष्टि सुलभ हुई है। इस प्रकार प्रकाश-योजना ने आज रंगशिल्प को कई दृष्टियों से प्रभावित किया है।''[39] 'इला' इस नाटक में नाटककार ने प्रकाश-योजना को लेकर पर्याप्त निर्देश दिए हैं। पहले अंक के दूसरे दृश्य में निर्देश हैं -

''मंच पर पूर्ण अंधकार। धीरे-धीरे उस कोने में प्रकाश उभरता है जहाँ वशिष्ठ और विद्याधर बैठे हैं।''[40]

तीसरे अंक के चौथे दृश्य में भी नाटककार ने इसी प्रकार प्रकाश-योजना का वर्णन किया है।

''इला पर केंद्रित प्रकाश धीमा हो जाता है, उसकी छायावृत्ति उठती है। इधर-उधर देखती है। हलका प्रकाशवृत्त छायावृत्ति के मुख पर घूमता है। छायावृति वीरासन में बैठ जाती है। आँखे नेपथ्य की ओर उसी दिशा

में प्रकाश-केंद्रित।''[41]

चौथे अंक के चौथे दृश्य में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है -

''धीरे-धीरे मंच पर अंधकार। प्रकाश केवल सुद्युम्न के मुख पर केंद्रित। आँखें खोलता है। दूर शून्य में देखता है। निचले मंच पर कोने में प्रकाश उभरता है।''[42]

इस प्रकार 'इला' इस नाटक में नाटककार श्रोत्रिय जी ने प्रकाश-योजना का प्रयोग किया है।

'साँच कहूँ तो' इस नाटक में भी श्रोत्रिय जी ने सफलता से प्रकाश योजना का प्रयोग किया है। इसमें स्पाट-लाइट, बिंदु-प्रकाश, तल-प्रकाश आदि रूपों का प्रयोग हुआ है। विविध रंगी प्रकाश का भी प्रयोग इस नाटक में हुआ है। विविध रंगी प्रकाश का उदाहरण द्रष्टव्य है -

''राजमती पर घबराहट प्रकट करनेवाला विविध रंगी प्रकाश।''[43]

नाटक में कहीं-कहीं बिंदु-प्रकाश का भी प्रयोग श्रोत्रिय जी ने किया है -

''प्रकाश-बिंदु के बीचोबीच पंडित जी अपना पोथीपत्रा फैलाये बैठे हैं।''[44]

''निचले मंच पर प्रकाश केंद्र में।''[45]

उड़ीसा नरेश के राज्य में योगी की भेंट बीसलदेव से होती। यह योगी अनेक शक्तियों का धारणकर्ता है। उड़ने का उपक्रम वह प्रकाश की सहायता से करता है। प्रकाश सभी दिशाओं से आकर ऊपर चला जाता है -

''योगी उड़ने का उपक्रम करता है। प्रकाश के माध्यम से उड़ने का आभास दिया जाता है।''[46]

हर दृश्य के अंत में होनेवाले अंधकार का वर्णन नाटककार ने किया है। तीसरे अंक के छटे दृश्य में भी नाटककार ने निर्देश दिए हैं -

''प्रकाश केंद्र में योगी ऊँचे स्थान पर बैठा है।''[47]

इस प्रकार पूरे नाटक में श्रोत्रिय जी ने प्रकाश का वर्णन किया है। प्रस्तुत नाटक के मंचन के समय प्रकाश एवं ध्वनि का नियोजन हरीशचंद्र सिंह जी ने किया था।

'फिर से जहाँपनाह' इस नाटक का प्रकाशन सन 1997 में हुआ। नाटक के मंचन के लिए पर्याप्त आधुनिक उपकरणों की उपलब्धता थी। इसी कारण नाटक का मंचन सफलता से हुआ। प्रकाश-योजना की दृष्टि से नाटक सफल सिद्ध हुआ है। निर्देशक ने तल-प्रकाश, भास्वर प्रकाश, कोमल आलोक, बिंदु प्रकाश आदि रूपों का प्रयोग नाटक में किया है। नाटक की शुरूआत में ही प्रकाश-योजना को लेकर नाटककार ने निर्देश दिए हैं -

''मंच पर अंधकार। तेजस्वी वृद्ध काल-पुरुष (सिर के पीछे चक्र) तीव्र प्रकाश आवर्त में मंच पर नृत्यु गति में घूमता हुआ दूसरे पार्श्व से निकल जाता है। कोने में बैठे फटेहाल आदमी पर प्रकाश केंद्रित।''[48]

प्रथम अंक के सातवे दृश्य में भी नाटककार ने निर्देश दिए हैं -

''मंच पर अंधकार... एक कोने में प्रकाश उभरता है।''

''कोने में अंधकार मंच पर प्रकाश''[49]

बिंदु-प्रकाश का प्रयोग नाटक में एक-दो जगहों पर हुआ है -

''पुनः अंधकार। प्रकाश सिर्फ फटेहाल व्यक्ति पर केंद्रित।''[50]

इस प्रकार श्रोत्रिय जी के तीनों नाटक - 'इला', 'साँच कहूँ तो' और 'फिर से जहाँपनाह' में प्रकाश-योजना के सभी रूपों का प्रयोग हुआ है। बिंदु-प्रकाश, तल-प्रकाश, कोमल आलोक आदि रूपों का प्रयोग हुआ है। प्रथम नाटक 'इला' में बिंदु प्रकाश तथा केंद्रित प्रकाश का प्रयोग हुआ है। 'साँच कहूँ तो' में राजमती की घबराहट दिखाने हेतु नाटककार ने विविध रंगी प्रकाश की योजनाएँ की हैं। योगी को प्रकाश के आभास द्वारा आकाश में उड़ाया जाता है। इसी प्रकार 'फिर से जहाँपनाह' में भी प्रकाश-योजना का नियोजन सफलता से किया है। इस प्रकार श्रोत्रिय जी के तीनों नाटक प्रकाश-योजना की दृष्टि से सफल सिद्ध हुए हैं।

3.1.6 प्रभाकर श्रोत्रिय के नाटकों में ध्वनि एवं संगीत-योजना :-

ध्वनि एवं संगीत-योजना मंचीयता का महत्त्वपूर्ण अंग है। टेप-रिकार्डर आदि की सहायता से आज रंगमंच पर भीड़ के अर्थहीन कोलाहल से लेकर पशु-पक्षियों की बोलियाँ, घन गर्जना, बिजली की कड़क आदि अनेक प्रकार की ध्वनियों को सुनवाया जा सकता है। टेलिफोन ने भी संवाद कला को एक नया आयाम दिया है। ध्वनि संकेतों की सहायता से मंच पर वातावरण के यथार्थ को अधिक गहरा रंग प्रदान किया जा सकता है। कोई भी नाट्यकृति बिना ध्वनि एवं संगीत योजना के पूरी नहीं होती। श्रोत्रिय जी का पहला नाटक 'इला' में भी स्थान-स्थान पर ध्वनि एवं संगीत योजना को लेकर संकेत मिलते हैं। प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में ही ध्वनि को लेकर संकेत मिलते हैं -

''नेपथ्य से प्रसव-पीड़ा में कराहने का स्वर...।''

''नेपथ्य से खड़ाऊ की ध्वनि''[51]

इसी दृश्य में संगीत को लेकर संकेत मिलते हैं -

''आघातकारी वाद्य-झंकार, वशिष्ठ स्तब्ध''[52]

पहले अंक के चौथे दृश्य में संगीत को लेकर निर्देश मिलते हैं -

''सहसा मेघों की गड़गड़ाहट। नेपथ्य में उल्कापात।''

''अंधकार नेपथ्य से मेघों का गर्जन। उल्कापात, सियारों के रोने की आवाजें। अमांगलिक ध्वनियाँ''[53]

द्वितीय अंक में एक दो जगह पर ही संगीत-योजना का निर्देश हुआ है। प्रवेशक में एक जगह पर वर्णन है -

''प्रसंगानुकूल वाद्य-संगीत का प्रयोग।''[54]

द्वितीय अंक के दूसरे दृश्य में सुद्युम्न और सुमति के विवाह का वर्णन है। विवाह के मौके पर संगीत को लेकर इस प्रकार वर्णन हुआ है -

''कुछ क्षणों के बाद नेपथ्य से विवाह वाद्यों की ध्वनि। विवाह मंत्र। अंत में 'युवराज सुद्युम्न और युवराज्ञी देवी सुमति की जय!' के स्वर''[55]

इस प्रकार 'इला' इस नाटक में श्रोत्रिय जी ने ध्वनि एवं संगीत योजना को लेकर पर्याप्त संकेत मिलते हैं। अतः असी कारण इसका मंचन सफल हुआ।

'साँच कहूँ तो' में भी नाटककार श्रोत्रिय जी ध्वनि एवं संगीत को लेकर पर्याप्त निर्देश दिए है। 'साँच कहूँ तो' का मंचन 3 अक्टूबर 1993 को कमल वशिष्ठ के निर्देशन में हुआ था। इसका संगीत निर्देशन श्री श्याम अग्रवाल ने किया। पूरे नाटक में आनंद, दुःख, निराशा, उल्लास आदि भावनाओं को व्यक्ट करने के लिए अग्रवाल जी ने संगीत का अच्छा प्रयोग किया है। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है। राजमती और बीसल के विवाह की घड़ी आ गई है। राजमती अपनी सखियों के साथ हँस रही है -

''पार्श्व से मंगल वाद्य ध्वनियाँ''[56]

राजा बीसलदेव राजमती को छोड़कर उड़ीसा राज्य की ओर जा रहा है जब बीसलदेव स्वयं उसे यह बात बताता है तब वह आश्चर्यविभोर हो जाती है। ऐसे समय में श्रोत्रिय जी आघातकारी वाद्य झंकारों का नियोजन किया है -

''आघातसूचक झंकार''[57]

बीसलदेव राजमती को छोड़कर उड़ीसा चला जाता है। राजमती अत्यंत दुःखी हो जाती है उसका दुःख प्रकट करने हेतु वेदनात्मक संगीत की योजना की गई है -

''वेदनात्मक संगीत के साथ अंधकार''[58]

उड़ीसा की ओर गए पंड़ित की चिंता राजमती को लगी रहती है। बारीश के दिनों में पंडित को अनेक कठिनाइयों का सामना करके उड़ीसा की ओर जाना होगा। इस बात से वह परीचित है। बारीश का वर्णन नाटककार ने इस प्रकार किया है -

''नेपथ्य से मेघ-गर्जन, बिजली की चमक, आँधी।''[59]

इस प्रकार उचित जगह पर नाटककार ने ध्वनि एवं संगीत की योजना पूरे नाटक में सफलता के साथ की

है।

'फिर से जहाँपनाह' इस नाटक में नाटककार दो अंकों में दो अलग-अलग कालखंडों का चित्रण किया है। इसमें ध्वनि एवं संगीत का आवश्यकता नुसार प्रयोग हुआ है। नाटक की शुरूआत में ही नेपथ्य से ध्वनि सुनाई देती है।

''नेपथ्य से वायुयानों, मोटरों, मशीनों की आवाजें''

''कोरस गाते हुए जुलूस आता है''[60]

पहले अंक में आधुनिक काल का चित्रण मिलता है। संपर्क करने के लिए नेतागण फोन का इस्तमाल करते है इसी कारण जगह-जगह पर फोन के बजने की आवाज सुनाई देती है।

दूसरे अंक की शुरूआत में प्रथम दृश्य में युद्ध वाद्यों की ध्वनियाँ सुनाई देती है। नाटककार लिखते हैं -

''युद्ध वाद्यों की ध्वनियाँ जारी।''[61]

द्वितीय अंक के चतुर्थ दृश्य के अंत में तलवारें चलने की ध्वनि का निर्देश दिया गया है -

''नेपथ्य में तलवारें चलने की ध्वनि और शोर।''[62]

इस प्रकार 'फिर से जहाँपनाह' इस नाटक में नाटककार श्रोत्रिय जी ने आवश्यकता नुसार ध्वनि एवं संगीत का प्रयोग किया है। 'इला' में कई ऐसे प्रसंग है जिन्हें सशक्तता से पेश करने हेतु नाटककार ने प्रभावी संगीत का प्रयोग किया है। चकित करानेवाली घटनाओं को व्यक्त करने हेतु आघातकारी वाद्य-झंकारों की योजना की है। नाटक 'साँच कहूँ तो' भी संगीत-योजना की दृष्टि से सफल नाटक है। राजा बीसलदेव और राजमती के विवाह प्रसंग पर मंगलकारी वाद्य-ध्वनियों की योजना की गई है। राजमती के विरह वर्णन को व्यक्त करने के लिए वेदणात्मक संगीत की योजना की गई है। 'फिर से जहाँपनाह' में आधुनिककालीन परिवेश की निर्मिती के लिए वायुयानों, मोटरों, मशीनों के आवाज की योजना की गई है। दूसरे अंक में युद्ध की पूर्वसूचना हेतु युद्ध वाद्य-ध्वनियों का नियोजन है। इस प्रकार श्रोत्रिय जी के तीनो नाटकों में ध्वनि एवं संगीत का सफल प्रयोग हुआ है। प्रभाकर श्रोत्रिय के तीनों नाटकों में ध्वनि एवं संगीत का सफल प्रयोग हुआ है।

निष्कर्ष

प्रभाकर श्रोत्रिय जी के तीनों नाटक 'इला', 'साँच कहूँ तो' और 'फिर से जहाँपनाह' मंचीयता की दृष्टि से पर्याप्त सफल नाटक कहे जा सकते हैं। 'इला' में नाटककार ने एक मंच की योजना की है। प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु पौराणिक होने के कारण इसमें तत्कालीन परिवेश का निर्माण मंच पर किया है। नाटक में कई बार वन का चित्रण किया है इसी कारण मंच पर चित्रों की सहायता से तो कभी संगीत की सहायता से वन का परिवेश

निर्माण किया है। हर दृश्य की शुरूआत में दृश्य-सज्जा का सफलता से आयोजन किया है। परिवेश के अनुसार ही नाटक में वेशभूषा की है। ध्वनि एवं संगीत की दृष्टि से भी नाटककार ने पर्याप्त निर्देश दिए हैं। प्रकाश-योजना का नाटककार ने पर्याप्त ध्यान रखा है और हर पात्र के अभिनय का भी ध्यान रखा है।

'साँच कहूँ तो' में नाटककार ने दो मंचों की योजना की है। एक मंच पर राजमती के पक्ष का चित्रण है तो दूसरे मंच पर राजा बीसलदेव के राज्य का चित्रण। इन दो मंचों को जोड़नेवाला एक रपटा है। 'साँच कहूँ तो' में मध्यवर्गीय काल की राज-व्यवस्था का चिणत्र मिलता है। इसी वजह से नाटककार ने तत्कालीन परिवेश के निर्माण हेतु मंच पर राजमहल के दृश्य दिखाए हैं। तत्कालीन परिवेश के अनुकूल वेशभूषा की है। राजा बीसलदेव राजवस्त्रों में मंच पर आते हैं तो पंडित भी अपने वेश में आते हैं। अभिनेयता को लेकर नाटककार सतर्क रहें हैं। प्रकाश-योजना का ध्यान भी नाटककार ने रखा है। ध्वनि एवं संगीत का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया है। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक भी मंचीयता की दृष्टि से योग्य है।

'फिर से जहाँपनाह' श्रोत्रिय जी का एक प्रयोगधर्मी नाटक है। इसमें सिर्फ दो अंक हैं। पहले अंक में आधुनिक और दूसरे अंक में मध्ययुगीन परिस्थिति का चित्रण किया है। एक ही मंच पर इन दो परिवेशों का सफल चित्रण किया है। कबीर नामक पात्र नाटक के मंच का सूत्रधार है। नाटककार ने मंच-सज्जा के बारे में विशेष निर्देश दिए हैं। दृश्य-सज्जा का भी ध्यान उन्होने रखा है। हर पात्र की अभिनेयता को लेकर उन्होने संकेत दिए हैं। आवश्यकता नुसार प्रकाश-योजना का नियोजन किया गया है। ध्वनि एवं संगीत का भी समयानुसार उचित प्रयोग दिखाई देता है। अतः श्रोत्रिय जी का 'फिर से जहाँपनाह' नाटक मंचीयता की दृष्टि से सफल नाटक सिद्ध होता है। इस प्रकार श्रोत्रिय जी के तीनों नाटक मंचीयता की दृष्टि से सफल प्रतीत होते हैं।

'इला' श्रोत्रिय जी का प्रथम नाटक है। मंचीयता की दृष्टि से 'इला' सफल नाटक सिद्ध हुआ है। प्रस्तुत नाटक की मंचीयता को लेकर डॉ. विभुकुमार और डॉ. रूपाली चौधरी द्वारा एक किताब प्रकाशित हुई है। इसमें 'इला' की मंचीयता पर अलग-अलग नाटककारों ने अपनी लेखनी चलाई है। प्रस्तुत नाटक श्रोत्रिय जी का पहला नाटक होने के बावजूद इसमें मंच-सज्जा, दृश्य-सज्जा, वेशभूषा एवं रूपसज्जा, प्रकाश-योजना, ध्वनि एवं संगीत योजना और अभिनेयता की दृष्टि से परिपूर्ण है। 'साँच कहूँ तो' मंचीयता की दृष्टि से श्रोत्रिय जी की अलग और प्रयोगशील प्रस्तुति है। इसमें नाटककार ने दो मंचों की योजना की है। इसके कारण एक मंच पर एक दृश्य और दूसरे मंच पर दूसरे दृश्य की योजना नाटककार ने की है। इसमें कुछ अद्‌भुत घटनाएँ भी शामिल की गई है। योगी के उड़ने का उपक्रम प्रकाश की सहायता से दिखाया गया है। ध्वनि एवं संगीत की दृष्टि से भी यह नाटक परिपूर्ण है। अभिनेयता के लिए लेखक ने पर्याप्त निर्देश दिए हैं। अतः यह नाटक भी मंचीयता की दृष्टि से परिपूर्ण सिद्ध होता है। तृतीय नाटक 'फिर से जहाँपनाह' में दो कालखंडों का विवरण होने के कारण

नाटककार ने इसकी मंचीयता की ओर बारीकी से ध्यान दिया है। प्रथम अंक में जो पात्र अभिनय करते हैं वहीं दूसरे अंक में नाम बदलकर अभिनय करते हैं दो अंकों में उनकी वेशभूषा अलग-अलग हैं। संगीत का प्रयोग आवश्यकता नुसार हुआ है। प्रकाश की सहायता से कुछ अद्‌भुत घटनाएँ दिखाई गई हैं। अभिनेयता को लेकर नाटककार ने ध्यान रखा है। अतः समग्र रूप से नाटक का मंचित होना अनिवार्य तत्त्व माना जाता है। इस कसौटी की दृष्टि से प्राप्त जितनी भी कसौटियाँ हैं, जैसे मंच-सज्जा, दृश्य-सज्जा, रूप-सज्जा, अभिनेयता, प्रकाश-योजना, संगीत एवं ध्वनि का नाटककार श्रोत्रिय जी ने पूरा ख्याल रखा है। समय-समय पर उचित निर्देश दिए हैं। जिससे अभिनेता, निर्देशक, ध्वनि एवं संगीत संयोजक आदि के लिए काफी सहायता प्राप्त होती है। नाटक के कथ्य के साथ ही इन्हीं बातों की ओर ध्यान देने के कारण मंचीयता की दृष्टि से सफल बन पड़े हैं।

संदर्भ संकेत

1. प्रभाकर श्रोत्रिय - 'इला', पृ. 63
2. वही, पृ. 63
3. वही, पृ. 64
4. वही, पृ. 102
5. वही - 'साँच कहूँ तो', पृ. 19
6. वही, पृ. 68
7. वही, पृ. 84
8. वही - 'फिर से जहाँपनाह', पृ. 36
9. वही, पृ. 36
10. वही - 'इला', पृ. 34
11. वही. पृ. 46
12. वही, पृ. 69
13. वही, पृ. 86
14. वही - 'साँच कहूँ तो', पृ. 22
15. वही, पृ. 30
16. वही, पृ. 32
17. वही - 'फिर से जहाँपनाह', पृ. 17

18. वही, पृ. 23
19. वही, पृ. 64
20. गोविंद त्रिगुणायत - 'शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत'
21. प्रभाकर श्रोत्रिय - 'इला', पृ. 15
22. वही, पृ. 66
23. वही, पृ. 67
24. वही, पृ. 47
25. वही, पृ. 53
26. वही - 'साँच कहूँ तो', पृ. 15
27. वही, पृ. 15
28. वही, पृ. 66
29. वही - 'फिर से जहाँपनाह', पृ. 38
30. वही, पृ. 41
31. वही, पृ. 49
32. वही - 'इला', पृ. 75
33. वही, पृ. 19
34. वही - 'साँच कहूँ तो', पृ. 26
35. वही, पृ. 40
36. वही, पृ. 39
37. वही - 'फिर से जहाँपनाह', पृ. 31
38. वही, पृ. 77
39. गोविंद त्रिगुणायत - 'शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत'
40. वही - 'इला', पृ. 30
41. वही, पृ. 79
42. वही, पृ. 106
43. वही - 'साँच कहूँ तो', पृ. 40
44. वही, पृ. 51

45. वही, पृ. 56
46. वही, पृ. 76
47. वही, पृ. 81
48. वही - 'फिर से जहाँपनाह', पृ. 45
49. वही, पृ. 45
50. वही, पृ. 51
51. वही - 'इला', पृ. 17
52. वही, पृ. 24
53. वही, पृ. 41
54. वही, पृ. 46
55. वही, पृ. 58
56. वही - 'साँच कहूँ तो', पृ. 28
57. वही, पृ. 40
58. वही, पृ. 56
59. वही, पृ. 68
60. वही - 'फिर से जहाँपनाह', पृ. 7-8
61. वही, पृ. 51
62. वही, पृ. 75